GOLDEN RESEARCH THOUGHTS

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और उनका युगीन परिवेश

पिंकी जोशी[1] , डॉ. आद्या[2]

[1] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, जिला-टोंक, राजस्थान.

[1] एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, जिला-टोंक, राजस्थान.

सारांश

श्रेष्ठ साहित्य में युग–चेतना के बाह्य एवं आंतरिक–दोनों पक्ष अभिव्यक्ति पाते हैं। बाह्य युगीन प्रभाव के परिणामस्वरूप साहित्यकार अपने युग का सामाजिक; राजनैतिक तथा आर्थिक एवं धार्मिक गतिविधियाँ एवं सुधार आन्दोलनों आदि का पूर्ण प्रभाव ग्रहण कर उनकी सशक्त अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। निराला जी ने पीड़ा विषाद आनन्द और उल्लास का अनुभव केवल अपनी ही सीमाओं में न रहकर युग की विकलांगता के परिप्रेक्ष्य में किया है। जहाँ धार्मिक रूढ़ियों अन्धविश्वासों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश प्रगतिशील हुआ, वहीं कतिपय बुद्धिजीवियों के पास स्पष्ट समझ का अभाव होने के कारण राष्ट्र को समय–समय पर साम्प्रदायिक तनावों से भी गुजरना पड़ा है। आजादी से पूर्व देश को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा और उसी जर्जर अवस्था में देश को ब्रिटिश सरकार ने हमारे राज–नेताओं को सौप दिया। उसी दौरान पनपी अनैतिक असामाजिकता; अराजकताओं ने आम आदमी को उसकी उन्नति की योजनाओं से वंचित कर दिया और वर्ग भेद और भी स्पष्ट हुआ। आर्थिक संकट के इस दौर में भारतीय जन–मानस अधिक कुंठित हुआ और उसमें आक्रोश; आन्दोलन; क्रांति जैसी प्रवृतियाँ उभर कर सामने आयी। समाज में अनेक विसंगतियाँ थी और उसका उन्मूलन हुआ यह सब निराला के साहित्य लेखन में परिलक्षित होता है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग के साथ कदम–मिलाकर चलता है वह उस विषमताओं, समस्याओं से अवगत कराकर, अपने विचारों से नये सुझाव भी देता है, आदर्श भी अपने चरित्र–पात्रों से समाज के समक्ष उच्च आदर्श स्थापित कर नयी सोच भी देता है। साहित्यकार के जीवन के चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण उसके साहित्य के विषय अवश्य बनते हैं। निराला के युग में उनके साहित्य पर भी तद्युगीन सभी धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक गतिविधियों का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित हुआ है। निराला जी के साहित्य में भारतेन्दु–युग से लेकर प्रेमचन्द युग तक की सभी प्रवृतियाँ जुड़ी हुई है। अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी वे अपने युग से बहुत आगे रहे। उनकी भावधारा युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उत्तरोत्तर विकसित हुई। उनके साहित्य में युगीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रयुक्त शब्दावली: सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', युगीन परिवेश, राजनैतिक परिवेश, धार्मिक परिवेश, आर्थिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, साहित्यिक परिवेश

किसी भी साहित्यकार की विचारधारा को समझने के लिए उसके युग का अध्ययन अनिवार्य होता है। युग की विषमताएँ और आकांक्षाएँ साहित्यकार के माध्यम से उसके साहित्य को स्वरूप तथा नया आधार प्रदान करती हैं, साहित्यकार ही नहीं; चिन्तक और विचारक भी अपने युग की सीमाओं के भीतर ही कार्यशील होते हैं उसमें युग की चेतना ही पूँजीभूत और साकार हो उठती है, कोई साहित्यकार तो अपने देश की प्राचीन संस्कृति के प्राणवान् मूल्यों का अन्वेषण कर उनका नये युग के निर्माण में प्रयोग करता है, तथा कोई किसी नयी चिन्तन धारा से प्रभावित होकर नये युग के स्वप्न तराशने लगता है। श्रेष्ठ साहित्य में युग–चेतना के बाह्य एवं आंतरिक–दोनों पक्ष अभिव्यक्ति पाते हैं। बाह्य युगीन प्रभाव के परिणाम स्वरूप साहित्यकार अपने युग का सामाजिक; राजनैतिक तथा आर्थिक एवं धार्मिक गतिविधियाँ एवं सुधार आन्दोलनों आदि का पूर्ण प्रभाव ग्रहण कर उनकी सशक्त अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है।[1]

(क) राजनैतिक परिवेश

राजनीति किसी भी राष्ट्र का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग है और उस राष्ट्र की सशक्त व्यवस्था राष्ट्र की अपनी विशिष्ट राजनीति होती है, जिसकी छत्रछाया में ही देश की उन्नति अवनति की नींव पड़ती है। शर्मा, रामविलास के अनुसार ''निराला ने लड़कपन में बंग–भंग विरोधी स्वदेशी आंदोलन देखा। उन्होंने उन वीर युवकों की कहानियाँ पढ़ी और सुनी जिन्होंने सशस्त्र क्रांति के द्वारा भारत को मुक्त कराने के प्रयास में अपने प्राण दिये, उन्होंने सन् 1920 और 1930 में स्वाधीनता आन्दोलन के उभार देखें जिनमें भारतीय जनता ने व्यापक रूप में भाग लिया–निराला भारतीय और विश्व राजनीति के बारे में जो सामग्री मिलती उसे ध्यान से पढ़ते थे, जो देखते थे उससे पढ़ी हुई सामग्री की

तुलना करते थे। फिर अंग्रेजी राज्य और भारत के बारे में अपने निष्कर्ष निकालते थे। तब स्वाधीनता–प्रेम उनके साहित्य की प्रेरणा हो तो इसमें आश्चर्य नहीं''[2]

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त और बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ राजनैतिक दृष्टि से कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों का काल रहा। भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का आगमन विशेष महत्व रखता है। अंग्रेजों ने अपने लोभ के कारण राष्ट्र को राजनैतिक सूत्रों से बाँधा। तिलक और गोखले ने जनता में पश्चिमी मूल्यों के प्रति रूझान पैदा किया तथा मूल्यों को स्वीकार करते हुए भी अंग्रेजी शासन की न्यूनताओ का बोध कराकर देशी शासन की आवश्यकता के बीज बोये।

राष्ट्रीयता का एक और व्यापक तथा महत्वपूर्ण पहलू गाँधीजी के माध्यम से भारतीय राजनीतिक चेतना में उत्पन्न हुआ जिसके अन्तर्गत गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। सत्याग्रह, खादी, चरखा, अछूतोद्धार, मद्य–निषेध; विदेशी सामानों का बहिष्कार आदि गाँधीजी के ये ही कार्यक्रम थे, जिनसे भारतीय राष्ट्रीयता और अधिक पृष्ठ तथा मजबूत बनी। महात्मा गाँधी को अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन से अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के अधिकारों को वापस दिलाने में सफलता मिल चुकी थी। इस समय में देश की राजनीति का संचालन सूत्र उन्होंने अपने हाथ में ले लिया। प्रथम महायुद्ध के समय लार्ड हार्डिंग ने भारतीयों को विश्वास दिया था कि युद्ध के पश्चात् राजनीतिक तथा औद्योगिक दृष्टि से भारत के प्रति विशेष उदारता करने के कारण युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार भारत में लोकतंत्र–शासन की स्थापना करेगी। सन् 1919 ई॰ में नयी सुधार–योजना लागू हुई; परन्तु इस सुधार योजना से भारतीयों की आशाओं पर पानी फिर गया। कांग्रेस इस सुधार योजना से सन्तुष्ट नहीं हो सकी, अपितु उसने इसे अपर्याप्त, असंतोषजनक और निराशापूर्ण बताया। दूसरी ओर युद्ध का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीयता पर पड़ा। राष्ट्रीय भावनाओं का तेजी से विकास होने लगा। युद्ध के बाद भारत को भी युद्ध के भयंकर परिणामों का शिकार होना पड़ा। एक ओर वस्तुओं के अधिक मूल्य और कर वृद्धि के कारण भारतीय किसानों का जीवनस्तर गिरता जा रहा था। जनता का कष्ट बहुत बढ़ गया था। जनता ने सरकार की नीति का विरोध करना शुरू किया। कहीं–कहीं बलवे हुए और भूखी जनता ने बाजार लूट लिये। ऐसी ही विषम स्थिति में प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा इत्यादि महामारियाँ शुरू हुई। फलतः देश में क्रांतिकारी आन्दोलन फिर से चल पड़ा।[3]

विदेशियों की शोषण–नीति अब पूर्णतः स्पष्ट हो चुकी थी जिसने भारतीयों की आँखें खोल दी, परिणाम स्वरूप उनमें राजनीतिक असन्तोष उग्र होता गया। निराला ने स्वयं इन समस्त स्थितियों को अपनी आँखों से देखा और आत्मसात् किया था और इसी कारण उनकी आत्मा भी चीत्कार उठी। ''भारतवर्ष ने जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया जब खिलौना पाकर भारत बहल जाता था। देश समझ गया कि हाथ पर हाथ धर कर बैठने में काम न चलेगा। भारत में एक नई लहर पैदा हो गई। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी है।''[4] अब लोग भय छोड़ चुके थे। एक तरह के आत्मसम्मान का भाव राष्ट्र में पैदा हो चुका था। सरकार की प्रतिष्ठा और रोष की जड़ बहुत कुल हिल गई थी। और स्वराज्य की कल्पना के सम्बन्ध में भी लोगों का ज्ञान काफी बढ़ गया था। असहयोग आन्दोलन महात्मा गाँधी ने चलाया, जो भारत का पहला जन आन्दोलन था इस आन्दोलन ने देहाती जनता को भी प्रभावित किया। सभी श्रेणियों के लोग आन्दोलन में कूद पड़े। लोग हजारों की संख्या में स्कूल, कॉलेज कचहरी इत्यादि को छोड़कर आन्दोलन में शामिल हुये। इसका उद्देश्य था ब्रिटिश सरकार का पूर्णतः असहयोग करना। साथ ही, इसमें हिन्दू–मुस्लिम एकता तथा अस्पृश्यता–निवारण भी शामिल थे। असहयोग आन्दोलन की सफलता देखकर सरकार व्यग्र हो उठी। उसने आन्दोलन को कुचलने के लिए जबर्दस्त दमनचक्र चलाना शुरू किया। हिंसक घटनाओं के कारण गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। आन्दोलन के स्थगित हो जाने से न केवल राष्ट्रीय एकता ही बिखरी वरन् सरकार को साम्प्रदायिकता को भड़काने का पूरा अवसर मिल गया और उसने मुस्लिम लीग नेताओं को भड़का कर आन्दोलन से हमेशा के लिए अलग कर दिया परिणामतः स्थान–स्थान पर भयानक साम्प्रदायिक दंगे हुए।[5]

सन् 1930 में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में पहली बार पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। स्वाधीनता–प्रतिज्ञा पत्र सारे देश के शहरों, कस्बों और गाँवों तक में पढ़कर सुनाया गया। 12 मार्च सन् 1930 ई॰ के दिन सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हुआ। गाँधी के दृष्टान्त से प्रभावित होकर भारतीयों ने बड़े उत्साह और त्याग के साथ आन्दोलन शुरू किया। सर्वत्र गैरकानूनी नमक बनने लगा, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ; शराब की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू हुई। कहीं कहीं विदेशी कपड़े जलाये गये। स्कूल–कॉलेज के विद्यार्थियों; स्त्रियों और पुरूषों ने अपूर्व उत्साह के साथ इस आन्दोलन में भाग लिया। सरकार की दमन नीति भी तेजी से चली। महात्मा गाँधी के वचन उस समय क्रांति के शोले उगल रहे थे।[6] लखनऊ में अधिकारियों को सत्याग्रहियों पर डंडे बरसाते देख निराला जी ने कहा ''स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डंडों की मार कर घावों से बहती हुई रक्त धाराओं को देखकर अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतराने वाली अंग्रेजी सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोश में अभी नहीं, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाए।''[7]

1 सितम्बर 1939 से द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। भारतीयों को बिना पूछे ही युद्ध की विभीषिका में झोंक दिया गया। इस कारण असन्तुष्ट होकर कांग्रेस मंत्रीमण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। इस समय तक भारत में पूर्ण जागृति हो चुकी थी। 8 अगस्त, 1942 को भारत ने गांधीजी के नेतृत्व में सर्वप्रथम अपनी स्वाधीनता की घोषणा की। सारा भारत देश ''भारत छोड़ो'' ''करो या मरो'' आंदोलन की क्रांतिपूर्ण पुकारों से गूंज उठा। गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत की पराधीनता उनके लिये अपमानजनक है।[8] लार्ड माउन्टबेटेन भारत आये, उन्होंने 1947 ई॰ को पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ली। इस विभाजन में अनेक दंगे, लूटपाट तथा हत्यायें हुई जिन्होंने समकालीन साहित्य को पूर्णतः प्रभावित किया। निराला ने तत्कालीन युग का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा है– ''संसार में सांस लेने का भी सुभीत

नहीं'', यहाँ बड़ी निष्ठुरता हैं, यहाँ निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते हैं; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जनसेवा हो, चाहे देश सेवा, इस सेवा से, लोग अपनी सेवा करना चाहते हैं, किसान इसलिये कांग्रेस में आते हैं कि जमींदार की मारों से सरकार के अन्याय से बचें, और जमीन उनकी हो जायें, – पर इतना ही क्या सब कुछ है? क्यों इनसें जीवन को शांति मिलती है? शायद सांस के रहते नहीं मिलती।''[9]

इस युग की विषम और स्वार्थपूर्ण परिस्थितियों ने उनकी कला को और भी संवारा और युग की विषमता तथा नारकीयता से उत्तेजित भावों को निराला ने अपनी नई रचनाओं में सजाकर यथार्थ रूप में उपस्थित किया। अपनी रचनाओं में सजाकर यथार्थ रूप में उपस्थित किया। अपनी रचना ''चोटी की पकड़'' की भूमिका में निराला जी ने स्वयं लिखा है– ''स्वदेशी आन्दोलन की कथा है, लम्बी है, वैसी ही रोचक .....युग की चीज बनाई गई है।[10]

15 अगस्त, 1947 को भारत को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हुई। भारत स्वतंत्र हो गया। अंग्रेज यहाँ से चले गये किन्तु अपनी स्वार्थपूर्ण वृत्ति को वे यहीं छोड़ गये जिसके कारण भारत में विषम स्थिति उत्पन्न हो गई। विदेशी पूँजीपतियों के साथ जिन देशी पूँजीपतियों ने अपनी उन्नति करनी प्रारम्भ की थी, उनकी और उन्नति होने लगी। वस्तुतः देश स्वाधीन तो हुआ लेकिन स्वाधीन भारत में भोज का अधिकार एक विशिष्ट वर्ग ने ही अपने हस्तगत कर लिया और यह वर्ग राजनेता, जन – प्रतिनिधि; पूंजीपति और सामन्तों का वर्ग था। भ्रष्टाचार तो राजनीति में एक सामान्य बात हो गई। अवसरवादिता अनैतिकता, स्वार्थ–सिद्धि, व्यक्तिवादिता; अहंवादिता और धनलोलुपता तथा भाई–भतीजावाद जैसी प्रवृत्तियाँ तेजी से पनपीं।

स्वतंत्रता के बाद तेजी से उभरे जन–आक्रोश के मूल स्वातंत्र्योत्तर, राजनैतिक परिदृश्य, परिवेश ने अपनी अहम भूमिका अदा की है। राजनैतिक विसंगतियाँ किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। सच पूछा जाय तो आज राजनीति एक ऐसा अखाड़ा भर बनकर रह गई है जिसमें नैतिकता का क्रमशः ह्रास होता चला जा रहा है, और उसके दायरे में रहने वाला व्यक्ति छोटे विचारों वाला हो गया है। जन सेवा के स्थान पर उसका ध्येय जलकल्याण नहीं, अपितु स्व–कल्याण हो चुका है।[11] अधिक से अधिक अर्थ–लोलुपता ने पुराने आदर्शों को तेजी से विघटित किया है। ''एक सच्चे युगचेता साहित्यकार के नाते ही निराला जी ने अपने युग का आलोड़न–विलोड़न करके उच्च सांस्कृतिक निर्माण के तत्व निकाले।''[12] पीड़ा विषाद आनन्द और उल्लास का अनुभव निराला जी ने केवल अपनी ही सीमाओं में न रहकर युग की विकलांगता के परिप्रेक्ष्य में किया है।

(ख) धार्मिक परिवेश

''धर्म'' अनिवार्यतः समाज से जुड़ा हुआ है। ''धर्म'' शब्द की व्युत्पत्ति से ही इसका महत्व और प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है –''धारयेति इति धर्मः'' अर्थात् जो इस संसार की स्थिति को कायम रखे इसे मर्यादा में बनाये रखे, वह धर्म है। धर्म के बिना कोई भी जाति देश एवं राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता।

मध्ययुगीन भारतीय धर्म, परम्परागत रीति रिवाजों विश्वासों तथा विचारों के साथ गम्भीर रूप से चिपका हुआ था। आगे चलकर ये रूढ़ियाँ ही हिन्दू धर्म का प्रतीक मान ली गई। जो हिन्दू धर्म कभी समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक और मानवता का रक्षक था, वही समाज का विघटन करने वाला तथा मानवता का भक्षक बन गया। जीवन और जगत् के सभी क्रिया–कलाप धर्म से सम्बन्धित कर दिए गए और व्यक्ति का स्वतः में कोई महत्व नहीं रहा। वह वर्तमान जीवन के सुख–दुःख का कारण पूर्व जन्म के कर्मों को मानता था। वह सदैव भाग्यवादी रहता था, न्याय अन्याय, विकास–विनाश तथा सफलता–असफलता आदि सब कुछ भाग्य के नाम पर झेलकर वह संतोष कर लेता था।[13] उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ एवं कुप्रथाएँ व्याप्त हो गई थी। लोगों का धार्मिक जीवन कुत्सित कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के दलदल में फँस गया था। जात–पाँत की संकीर्णता, अस्पृश्यता, जाति प्रथा के बन्धन की कठोरता आदि कुप्रथाओं के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिन्दू धर्म शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। धर्म रूढ़ि एवं परम्परा के कठोर बंधनों में जकड़ गया और उसमें उच्च दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का नितान्त अभाव था। धर्म के संचालकों को भी धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं था। धर्म की रक्षा के लिए इन कुप्रथाओं का अन्त करना आवश्यक था। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना होते ही ईसाई मिशनरियों ने भारत में ईसाई धर्म का प्रचार किया। चूंकि ईसाई धर्म के सिद्धान्त बहुत ही सरल एवं सीधे हैं अतः अशिक्षित भारतीय इस धर्म की ओर आकृष्ट हुए। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए सरकार ने गरीबों को प्रलोभन दिया। हिन्दू धर्म अत्यन्त ही क्लिष्ट था जिसके दार्शनिक सिद्धान्तों की सूक्ष्मता सामान्य जनता नहीं समझ सकती थी, ईसाई धर्म का तेजी से प्रचार होने लगा ऐसी परिस्थिति में हिन्दू धर्म का पतन अवश्यंभावी प्रतीत होने लगा। अतः भारतीय समाज–सुधारकों का ध्यान धर्म एवं समाज सुधार की ओर आकृष्ट हुआ। पुनर्जागरण के फलस्वरूप समाज सुधारकों का ध्यान इन कुप्रथाओं की ओर आकृष्ट हुआ और वे इन बुराइयों को दूर करने की आवाज उठाने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार ने भारत में धार्मिक सुधारों में योगदान किया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार से भारतवासियों को पाश्चात्य जागृति की उन्नति के रहस्य का पता चला। उनके विचार तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। धार्मिक संकीर्णता रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वास का अन्त हुआ। इस समय के सभी सुधार आन्दोलनों ने हिन्दू धर्म की कुरीतियों और अन्धविश्वासों का विरोध किया। समाज में धर्मभीरूता उत्पन्न हो जाने के कारण धर्म का उदात्त रूप क्रमशः नष्ट हो रहा था। नरबलि; जादू–टोना; तीर्थाटन; पूजापाठ आदि आडम्बरों और पाखण्डों में जनता

का विश्वास बढ़ता जाता था। इस समय के सभी धर्म सुधार आन्दोलनों ने हिन्दू धर्म कि कुरीतियों और अन्धविश्वासों का विरोध किया। प्रायः सभी सुधारक अवतारवाद, मूर्तिपूजा, धार्मिक अनुष्ठान एवं कर्म काण्डों के विरोधी थे।[14]

इन समाज एवं धर्म सुधारकों में प्रमुख राजा राममोहन राय, महादेव गोविन्द रानांदु, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, तिलक, गोखले, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गाँधी आदि विचारकों ने धर्म तथा समाज के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। इन धर्म सुधारकों ने निर्दयतापूर्वक धार्मिक प्रतिबन्धों द्वारा युगों से शोषित एवं पीड़ित जनता एवं नारी को मुक्त किया तथा मानवीय धरातल पर उन्हें प्रतिष्ठित कर उन्हें मानवीय अधिकारों से विभूषित किया।

वस्तुतः ईसाई धर्म एवं अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार हो जाने के कारण हिन्दूओं में भी अपनी पारम्परिक रूढ़ मान्यताओं के प्रति नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ और छुआछूत, खान–पान तथा जाति–पाँति के कठोर बन्धन शिथिल पड़ने लगे। अंग्रेजों ने भी इन कुप्रथाओं को रोकने का प्रयास किया और साथ ही नवीन विचारों से परिचित प्रबुद्ध चेतना सम्पन्न भारतीय विचारकों का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ।[15]

स्वतंत्रता के आस–पास का युग भारत में धार्मिक साम्प्रदायिकता की दृष्टि से काफी उथल– पुथल का युग रहा है। मुस्लिम बहुलता वाले प्रदेशों, क्षेत्रों को उनकी क्रांतिकारी मांग के अनुरूप एक स्वतंत्र राष्ट्र ''पाकिस्तान'' घोषित कर दिया गया और शेष प्रदेशों को भारत राष्ट्र में सम्मिलित कर लिया गया। उधर धर्मान्धता में डूबे रहने के कारण पाकिस्तान में गैर–मुस्लिम धर्मानुयायियों का जीवन पस्त हुआ और उन्होंने भारत में शरणार्थी के रूप में घुसना शुरू कर दिया। ऐसे में इन शरणार्थियों ने धार्मिक मर्यादाओं की परवाह न करते हुए आपसी सहयोग और समभाव जाग्रत किया। जब पाकिस्तान साम्प्रदायिक झगड़े का शिकार हुआ तो उसका सीधा असर हमारे देश पर भी पड़े बिना न रह सका; परिणामतः भारत में भी हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे भड़के। इस दौरान तात्कालीन सरकार और महात्मा गाँधी के प्रयासों से इन पर काबू पाने का पूरा प्रयास किया गया लेकिन आशातीत सफलता हाथ न लगी। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के साथ ही भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य का दर्जा हासिल हुआ और हर भारतीय नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार मिला।

आजादी मिलने के साथ ही हर भारतीय नागरिक की भावनाएँ विकसित होती रहीं। देश की प्रगति, धर्म समाज और राजनीति सभी दृष्टियों से राष्ट्र नवीनतम उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता रहा। प्रशासन और गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों के फलस्वरूप धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और कुप्रथाओं को उपेक्षित करने की दिशा में अभियानों ने जोर पकड़ा इससे सवर्णों और अस्पृश्यों को हर क्षेत्र में समाज अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हुई। हिन्दुओं के साथ–साथ अल्पसंख्यकों को भी इसका लाभ हुआ। धर्म के मामलों में समन्वयवादी रवैया अपनाया गया। तत्कालीन भारतीय जन मानस और उसमें भी उच्चपूर्ण अस्पृश्यता जैसे कुप्रभावों और धार्मिक आडम्बरों का शिकार थे, वे लोग अछूत के स्पर्श या कभी–कभी परछाई मात्र से ही अपवित्र, अशुद्ध होने के वहम से स्नान आदि करते थे। ऐसे माहौल में निम्नवर्ग के कल्याण के हेतु अछूतोद्धार मिशनों; हरिजन–कल्याण समितियाँ और प्रार्थना–समाज जैसी संस्थाओं की स्थापना की गई और अछूत तथा निकृष्ट मानी जानी वाली जातियों को एक नये नाम ''हरिजन'' से महात्मा गाँधी ने संबोधन किया। उनको धार्मिक और सामाजिक सार्वजनिक स्थानों में बे–रोक–टोक प्रवेश दिलाने का काम किया गया। इस दिशा में हमें आशातीत सफलता हाथ लगी जिसके परिणामस्वरूप छुआछूत जैसा राक्षस आज देश में मृतप्रायः अवस्था में है। संविधान के अनुसार भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। अर्थात् राज्य धर्म, जाति के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करेगा। लेकिन हरिजनों, आदिवासियों तथा पिछड़े हुए वर्ग के लोगों को कुछ विशेष सुविधा कुछ समय के लिए दी गयी है जिसका उद्देश्य है उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाना।

धर्म निरपेक्ष का तात्पर्य यह नहीं कि भारत सरकार नागरिकों को नास्तिक या विधर्मी बनाना चाहती है। उसका अर्थ यह है कि राज्य और सरकार धार्मिक बातों में तटस्थ रहेंगे और किसी धर्म के साथ पक्षपात नहीं करेंगे।[16] वर्तमान परिवेश का भारतीय धर्म अपने पुराने मूल्यों को काफी हद तक तोड़ चुका है और इसके साथ ही उसकी मानसिकता में बदलाव होने के कारण आज कुछ नवीन धार्मिक मूल्यों का विस्थापन भी हुआ है, आज वह रूढ़ियों का आँख मूंदें अनुकरण करने के बजाय कार्य कारण समाधान की दिशा में अग्रसर है। यह अलग बात हो सकती है कि कुछ धर्म के ठेकेदारों द्वारा भोले भाले लोगों को बहकाने के फलस्वरूप समय समय पर देश में साम्प्रदायिक दंगे–फसाद होते रहते है; जबकि कोई भी धर्म इसकी अनुमति नहीं देता। इन सब के बाद भी हमारे देश में धर्म का अस्तित्व बना हुआ है, धर्म द्वारा समर्थित जाति व्यवस्था में वर्ग भेद हैं, इसलिए साम्प्रदायिकता है और उस साम्प्रदायिकता को लेकर बुद्धिजीवियों में तर्क का अभाव भी हैं। समय–समय पर धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता को उकसाया जाता रहा है जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता दंगे–फसाद देश के किसी न किसी हिस्से में होते ही रहते हैं। रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद को लेकर चल रहा विवाद साम्प्रदायिक तनाव की जीती जागती मिसाल है। इस प्रकार जहाँ धार्मिक रूढ़ियों अन्धविश्वासों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश प्रगतिशील हुआ है वहीं कतिपय बुद्धिजीवियों के पास स्पष्ट समझ का अभाव होने के कारण समय–समय पर साम्प्रदायिक तनावों से भी राष्ट्र को गुजरना पड़ा है।

(ग) आर्थिक परिवेश

प्रत्येक युग की विभिन्न परिस्थितियाँ परस्पर सम्बद्ध होती है। राजनीतिक चेतना का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। ''जहाँ–डाल–डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा यह भारत देश है मेरा'' यह कभी भारत की पहचान थी, पर अब गरीबी, भूखमरी, और बेरोजगारी के नाम से जाना जाने लगा है। भारत की सम्पन्नता के कारणों पर भारत पर अनेक आक्रमण हुए, लेकिन अंग्रेजों ने भारत का

सबसे अधिक शोषण किया। अंग्रेज भारत में व्यापार करने आये और सम्पूर्ण अधिकार कर बैठे।[17] सत्ता में आने पर अंग्रेज शासक और व्यापारी दोनों ही बन बैठे। सारे ब्रिटिश शासन काल में सरकार की वाणिज्य नीति भारत को नुकसान पहुँचा कर अपना लाभ करने की थी, इसी कारण राजनीतिक प्रभुत्व का दूसरा नाम आर्थिक शोषण बन गया और भारतीय साम्राज्य इंग्लैण्ड की उपसम्पदा। क्रमशः भारत के कृषिसाधन, औद्योगिक संभावनायें और वाणिज्य उद्यम सभी कुछ ब्रिटेन के हितों के चाकर बन गये।

अंग्रेजों की व्यापारिक तथा औद्योगिक नीति के कारण भारतीय उद्योग–धन्धे नष्ट हो रहे थे, जिनके कारण लाखों जुलाहे और अन्य कारीगर बेकार हो गये। देशी राज्यों के हड़पने के कारण वहाँ की सेना भंग कर दी गयी। इस प्रकार देश में बेकारी और गरीबी भयंकर रूप से बढ़ी हुई थी। देश में अनेक बार अकाल पड़े थे और लोगों का जीवनस्तर निरन्तर गिरता जा रहा था। इस आर्थिक दुर्दशा के कारण असंतोष की भावना फैली हुई थी। डी॰ई॰ वाचा के अनुसार ''भारतीयों की आर्थिक अवस्था ब्रिटिश शासन–काल के अधीन बिगड़ चुकी थी। चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में एक बार खाना खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से बलपूर्वक कर प्राप्त करता था तथा वहाँ अपना माल भेजकर लाभ कमाता था।''[18]

अंग्रेजों की इस नीति के कारण देश के पुराने बड़े–बड़े औद्योगिक नगर वीरान हो गए, ग्रामीण कुटीर उद्योग धन्धों का अन्त हो गया। बेकार हो जाने वाले कारीगरों के लिये गाँव मे जाकर खेती करने के अतिरिक्त जीविका का कोई साधन नहीं रह गया। इस तरह जो भारत की खेती और उद्योग धन्धों की मिली जुली व्यवस्था का देश था, उसे जबरदस्ती ब्रिटेन के कल कारखानों वाले पूंजीवादियों का खेतिहार उपनिवेश बना दिया गया।

भारत के कृषि एवं शस्य श्यामला गाँव निश्चय ही यहां के आर्थिक जीवन के मुख्य स्त्रोत रहे हैं। प्राचीन काल में भारतीय राज्यों के तीन प्रमुख आधार स्तम्भ माने जाते थे शासक सेना और कृषक । इस युग में भारत का आर्थिक जीवन बहुत ही सन्तुलित अवस्था में था। किन्तु अंग्रेजों के आधिपत्य से यह सब कुछ क्रमशः नष्ट होता चला गया। मजदूरों और कारीगरों को बेकार कर दिया था। इन बेकार कारीगरों के निरन्तर कृषि की ओर झुकने से कृषि पर निरन्तर बोझ बढ़ता ही गया परिणामस्वरूप कृषि भी पूर्णतया लाभहीन हो गई। अब जमींदार अंग्रेजों के मध्यस्थ बनकर सामने आये जो मालगुजारी लेते थे। सरकार एवं किसानों के बीच अनेकों मध्यस्थ हो जाने से अब उनका अत्यधिक शोषण होने लगा। किसानो के कन्धों पर अब दोहरा बोझ आ गया था। एक ओर वह सरकारी मालगुजारी अदा करने के लिए चिंतित रहता था, दूसरी ओर महाजनों की ऋण अदायगी के लिए।

अंग्रेजों के शासन काल में देश में अनेकों भयंकर अकाल पड़े जिनमें लाखों की संख्या में लोग मौत के ग्रास बन गये वास्तव में अंग्रेजों के शासन प्रबन्ध उनकी आर्थिक नीति और अकालों का घनिष्ट सम्बन्ध है। एक ओर अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के कारण गरीबी और बेकारी फैल रही थी और जनता त्रस्त हो रही थी, उसी समय गेहूँ और दूसरे अनाज मालदार व्यापारी के गोदामों में भर रहे थे और मुनाफे के लिए देश के बाहर भेजे जा रहे थे। इन अकालों के निवारण के लिये सरकार ने कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किये। इस भीषण आर्थिक पराभाव ने ही भारतीयों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये उत्प्रेरित किया अतः भारतीयों में राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त करने की चेतना अतिशीघ्र आयी। परिणामस्वरूप इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने आर्थिक स्वतन्त्रता की मांग की।

एक ओर अंग्रेजों की शोषण की पराकाष्ठा और औद्योगिक विकास की आधिपत्य–प्रधान नीति ने राष्ट्रीयता तथा राजनीतिक जागृति की लहर दौड़ा दी दूसरी ओर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के व्यक्तिवादी स्वरूप ने सर्वहारा वर्ग के हृदय में संघर्ष की ज्वाला भरदी, भारतीय कृषक और श्रमिक वर्ग उसी शोषण का शिकार बन बैठे। तथा लगान चुकाने वाला किसान इस समय अपनी असमर्थता के कारण वैसे ही श्रमिक बन चुका था, दूसरे उसकी क्रय शक्ति भी अकालों से अब न्यूनतम हो गई थी। उद्योग धन्धे इस समय निरन्तर विदेशी मांगों के आधार पर विकसित हो रहे थे क्योंकि अंग्रेजी नीति ही मात्रा शोषण की थी। आर्थिक विषमता बढ़ाने वाले बड़े पैमाने के इन उद्योग धन्धों में महात्मा गाँधी जैसे भारतीय चिन्तकों की आस्था कदापि नहीं थी। इस कारण महात्मा गाँधी जी इन कुटीर उद्योग धन्धों एवं स्वदेशी वस्तुओं की ओर उन्मुख थे, जो भारतीय जीवन में स्वावलम्बन की भावना लाने में सफल माध्यम थे। बापू का विश्वास था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता लाने के लिए सर्वप्रथम देश को आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करनी चाहिए।

आर्थिक शक्ति का नियन्त्रण थोड़े से धनी व्यक्तियों के हाथ में आ जाने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति में असमानता दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी। विभाजन और वितरण के प्रति बढ़ती हुई इस विषमता तथा आर्थिक असमानता के प्रति क्षोभ भरा स्वर तत्कालीन सम्पूर्ण साहित्य में बिखरा पड़ा है। पूंजीवादी शोषण की आलोचना प्रत्यालोचन निराला–साहित्य में यत्र–तत्र व्याप्त है।[19] आर्थिक वैषम्य गरीबी और बेकारी के अनेक चित्र, अंग्रेजी राज्य की कटु आलोचना, जनता की दरिद्रता और दुखी जीवन की तस्वीरें सभ्य अंग्रेजी शासन पर सबसे अच्छी टिप्पणी है।[20]

1930–33 तथा 1942 के आस–पास तो सरकार का यह दमन–चक्र चरम सीमा पर पहुंच गया था। वर्ग संघर्ष विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। किन्हीं दो अथवा दो से अधिक वर्गों में जब तक परस्पर स्वार्थों का टकराव नहीं होता; गतिविधियाँ अपने संश्लिष्ट प्रभाव से चेतना का निर्माण नहीं कर सकती। विवेच्यकाल में एक तरफ तो साम्राज्यवादी शासन एवं राष्ट्रीय आन्दोलन का संघर्ष चलता है तथा दूसरी और जमींदार वर्ग तथा भारतीय कृषक वर्ग का संघर्ष होता है। साथ ही पूंजीपति वर्ग एवं मजदूर वर्ग का, (जो बीसवीं शताब्दी की वस्तु

है) संघर्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं। इस संघर्ष से इस काल में बहुत कुछ नये–नये परिवर्तन हुए; जिनकी प्रक्रिया भले मंदगति की रही हो, लेकिन उसने सम्पूर्ण ढाँचे को प्रभावित किया।

शिक्षित मध्यम वर्ग इन अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों में ही स्वाधीनता तथा राष्ट्रीयता की पहली चेतना जागृत हुई तथा परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन का संगठन किया गया। इस वर्ग की दृष्टि भौतिक स्वार्थों तक ही नहीं जाती थी, उच्च तथा विभिन्न राजनीतिक विचार दर्शन के अध्ययन से उसे देश–सेवा समाज सेवा तथा अन्य कर्त्तव्य की भी प्रेरणा मिलती थी। निराला का मत रहा है कि यही शिक्षित वर्ग किसानों में नवजागरण लाने का प्रयत्न कर सकते हैं। जेल जाने से अधिक महत्वपूर्ण कार्य किसानों में शिक्षा का प्रचार करना है। जमींदार वर्ग के शोषण के लिए एक ही उपाय है कि यदि किसान शिक्षित हो जाएं तो शोषण का चक्र समाप्त हो जायेगा।[21]

परिणामतः अंग्रेजों के शासनकाल के अंतिम चरण तक भारत की आर्थिक नौका डगमगा चुकी थी। 1947 में जब देश को आजादी हासिल हुई, उस समय देश आर्थिक रूप से बहुत पिछड़ चुका था। इसी दौरान लगातार देश को अकाल; भुखमरी महामारी, जैसे दैवीय प्रकोपों का सामना भी करना पड़ रहा था। ऐसे में तत्कालीन सरकार के सामने सबसे पहला लक्ष्य इस वर्ग को इस गड्डे से निकालना था जो एक लम्बे अर्से से शोषण; उत्पीड़न से तैयार हो चुका था।[22] स्वतंत्र भारत की सरकार के सामने अब पूंजीपतियों और सामन्तों के खिलाफ एक ऐसा रवैया अपनाने का प्रश्न खड़ा था जिसके समाधान के लिए प्रचुर धनराशि बुद्धिमता परिश्रम; निष्ठा और दूरदर्शिता का समन्वित योगदान अपेक्षित था, स्वतंत्र भारत में प्रजातांत्रिक सरकार का गठन हुआ और देश के हर वर्ग; समुदाय व नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इन वृहत्तर लक्ष्यों की पूर्ति के लिए तत्कालीन सरकार को अनेक सामाजिक आर्थिक अवरोधों का सामना भी करना पड़ रहा था। देश की अर्थ व्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित हुई। ऐसे में आर्थिक दशा के सुधारों मे वृद्धि की बजाय ह्रास ही होने लगा और उस आर्थिक संकट का प्रभाव अब तक हमारी अर्थ व्यवस्था को प्रभावित किए है।

देश की अर्थ–व्यवस्था को डाँवाडोल करने में दूषित राजनीति की भूमिका भी कोई कम नहीं। घोटाले, भ्रष्टाचार; अनैतिकता; अराजकता जहाँ देश को आर्थिक दृष्टि से कमजोर बना रहे है। वहीं उसकी छवि को भी धूमिल कर रहे हैं। इस प्रकार, स्वाधीनता के पश्चात् भारत में उपजे आर्थिक संकट के मूल अनेकों कारण रहे है। भ्रष्टाचार खूब तेजी से पनपा है; पनप रहा है। नैतिक मूल्यों का ह्रास इस कदर हो रहा है कि उनकी कोई मिसाल नहीं दी जा सकती। शान–शौकत; शोहरत, सम्मान, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता का कारण यदि अर्थ है तो उनका मानदण्ड भी अर्थ है। उधर, वर्ग–भेद भी ''अर्थ'' पर टिका है।

आजादी से पूर्व देश को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा और उसी जर्जर अवस्था में देश को ब्रिटिश सरकार ने हमारे राज–नेताओं को सौप दिया। उसी दौरान पनपी अनैतिक असामाजिकता; अराजकताओं ने आम आदमी को उसकी उन्नति की योजनाओं से वंचित कर दिया और वर्ग भेद और भी स्पष्ट हुआ। आर्थिक संकट के इस दौर में भारतीय जन–मानस अधिक कुंठित हुआ और उसमें आक्रोश ; आन्दोलन; क्रांति जैसी प्रवृतियाँ उभर कर सामने आयी।[23]

(घ) सामाजिक परिवेश

प्रत्येक युग में राजनैतिक धार्मिक, आर्थिक परिवेश समाज से जुड़ा रहता है, इन चारों स्थितियों से उस देश का विकास और पतन सम्भव है, साहित्यकार निराला ने भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्वपूर्ण और संक्रमणशील युग को देखा। अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक अस्थिरता के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन रूढ़िगत तथा परम्परा के कठोर बन्धनों में जकड़ गया था। समाज में अनेक कुत्सिक; असामाजिक, क्रूर एवं अमानुषिक रीतियाँ तथा प्रथाएँ घुस गयी थी। नारी की अवस्था अत्यन्त ही दयनीय थी। पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, बाल–हत्या, जात–पाँत की संकीर्णता, अछूतोद्धार हिन्दू–मुस्लिम जाति प्रथा आदि कितनी ही समस्याओं से तत्कालीन भारतीय समाज उलझा हुआ था। भारतीय समाज में इन तमाम कुरीतियों ने गहराई से अपनी जड़े जमा ली थी। शिक्षा के अभाव में अन्धविश्वास; रूढ़ियों तथा कुरीतियों में जकड़ कर भारत की अधिकांश ग्रामवासिनी जनता का जीवन अभिशाप बन गया था। ग्रामीण जीवन की भाँति नागरिक जीवन भी अस्त–व्यस्त हो गया था।

19वीं शताब्दी में भारत तथा जो धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और बौद्धिक प्रगति हुई उसका प्रभाव, सामाजिक जीवन में नव चेतना का संचार हुआ। अनेक ऐसे सुधारक उत्पन्न हुए और सुधारवादी संस्थाऐं स्थापित हुई जिन्होंने प्रचलित बुराईयों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और समाज–सुधार आन्दोलन चलाया।[24] अंग्रेजों के आगमन से भी अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों को हानि और लाभ दोनों ही हुए। अंग्रेजों के आने से जिस गुलामी ने देश को जड़ीभूत करना प्रारम्भ कर दिया था उसी ने सांस्कृतिक उन्नायकों को अपना इतिहास खोजने तथा रूढ़ियों पर प्रश्न चिह्न लगाने पर विवश कर दिया था। भारत में अंग्रेजों के स्थायी रूप से बस जाने के उपरान्त सांस्कृतिक पुनर्जागरण के स्वर ध्वनित हो उठे थे। वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण बहुत कुछ पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क का परिणाम है। इस शिक्षा से भारतीयों के मन में नये–नये रूपों का संघटन होने लगा। भारतीय मध्ययुग को श्रद्धा और विश्वास का युग था; किन्तु अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में तर्क बुद्धि को प्रबल बना दिया। भारतीय आचार–विचार; रीति–रिवाज; ज्ञान–परम्परा आदि को तर्क की कसौटी पर कस कर देखने लगे। उनमें पौराणिकता के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। इस आत्ममंथन तथा आत्म–विश्लेषण का परिणाम हमें भारतीय समाज एवं धर्म सुधारवादी आन्दोलनों में दृष्टिगोचर होता है।[25]

राजा राममोहन राय ने विधवा विवाह पर बल दिया और वर्ण व्यवस्था को हिन्दू समाज का अभिशाप करकर उसे समूल नष्टकर देने का प्रयत्न किया। राजाराममोहन राय के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानन्द के प्रयासों से आर्य समाज की स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने सुधारवादी दृष्टिकोंण फैलाया। आर्य–समाज का दृष्टिकोंण अपनी सरलता और सर्वग्राह्यता के कारण जन–साधारण की अपनी चेतना अपनी जागरूकता बन बैठा। सर्वसाधारण ने स्वयं समाज की कुरूपता को पहचानना प्रारम्भ कर दिया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि अनेक नाम थे, किन्तु इन सब ने एक ही सत्ता की प्रतीति का सन्देश दिया। धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों, मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, सती प्रथा, जातिप्रथा, बाल–हत्या, बाल –विवाह आदि का विरोध तथा विधवा–विवाह का समर्थन, नारी–शिक्षा का समर्थन, अछूतोद्धार आदि सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक संकीर्णताओं की अन्ध गलियों में भटकने वाली व्याकुल चेतना को अत्यधिक नवीन प्रशस्त मार्ग दिखाया। परन्तु उस समय तक इस सुधारवादी चेतना के फलस्वरूप अपेक्षित सामाजिक गतिशीलता का लक्ष्य प्राप्त न हो सका। साम्प्रदायिकता,जातीयता, अस्पृश्यता, धार्मिक कट्टरता जैसे भयंकर कोढ़ के दाग समाज से जा न सके। इसी समय एक समाज सुधारक महात्मा गाँधी हुए जो केवल राजनैतिक नेता ही नहीं थे, वे बहुत बड़े समाज सुधारक और मानवतावादी थे जिन्होंने समाज–सुधार के कार्य किये।वे भारत में एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे। जिसमें ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, छोटे–बड़े का भेद–भाव न हो । गाँधीजी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों का भी विरोध किया । गाँधीजी ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने की चेष्टा की। पर्दा–प्रथा का विरोध किया तथा शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। उनका कहना था कि स्त्रियों को पुरूष के समान ही अधिकार मिलना चाहिए। गाँधीजी ने साम्प्रदायिकता का विरोध किया। हरिजन आन्दोलन चलाकर हरिजनोद्धार की भरपूर चेष्टा की। उन्होंने शराबबन्दी का भी प्रयास किया।[26]

स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भारतीय नारी जगत भी उक्त रूढ़ि–जाल से मुक्ति पाने की दिशा में स्वाभिमान के साथ सक्रिय हुआ। नवीन शिक्षा–व्यवस्था और बौद्धिकता के विकास के परिणामस्वरूप ही संभवतः' नारी–समाज स्वतंत्रता संग्राम में पहले से ही हिस्सा ले रहा था। देश में चेतना और नवोत्थान के संदर्भ में नारी को एक सांस्कृतिक आधार भी प्राप्त हुआ साथ ही कुछ वैधानिक अधिकार भी दहेज–प्रथा, वेश्यावृति, सती–प्रथा, बाल–विवाह इत्यादि कुरीतियों को लेकर समाधान की दिशा में समय–समय पर संवैधानिक प्रयास जारी रहे।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने नारी को मतदान का अधिकार प्रदान करके नारी जगत में एक नवीन चेतना का संचार किया और शताब्दियों से पिछड़ी; पद दलित नारी पुरूष के साथ बराबरी का अधिकार पाने को उत्सुक हुई। शिक्षा–प्रणाली ने नारी की इस आकांक्षा को बल दिया, परिणामस्वरूप सामाजिक–राजनीतिक मंच पर नारी का नया रूप उभर कर सामने आया। समाज सुधारकों के प्रयत्नों से स्वतंत्रता के बारे में विधवा–विवाह जायज घोषित किया। अनेक विधवा आश्रमों की स्थापना हुई। 1972 ई. में 'नेटिव् मैरेज एक्ट' पास हुआ; जिससे बाल–विवाह, बहु–विवाह को रोकने तथा विधवा–विवाह और अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देने की चेष्टा की गई।

भारत के नये संविधान के अनुसार छूआ–छूत का अन्त कर दिया गया है। छूआ–छूत करने वाले को दण्ड देने की व्यवस्था भी की गई है और सभी नागरिकों को समान घोषित किया गया है। इन सबके बावजूद स्वातंत्र्योत्तर भारत प्रबुद्ध वर्ग में व्याप्त मनोवैज्ञानिक कुंठाओं, ग्रन्थियों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। जीवन की विभिन गतिविधियों व उपलब्धियों से इस वर्ग को आत्मिक संतुष्टि नहीं मिल सकी, परिणामतः चारों तरफ बिखराव, विघटन, टूटन, और विषमताएँ घर कर चुकी है। मंहगाई और बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता जैसी ज्वलंत समस्याएँ भी उक्त प्रवृत्तियों के पनपने के मूल कारण है। नवीनतम शिक्षा प्रणाली और नवजागरण सम्बंधी कारण रूप है। नवीनतम शिक्षा–प्रणाली और नवजागरण सम्बंधी विचारों ने उसे प्राचीन रूढ़ियों परम्पराओं–मान्यताओं व मूल्यों, आदर्शों के प्रति विद्रोह करने की राह दी नतीजा यह हुआ कि प्रबुद्ध वर्ग और युवा पीढ़ी उक्त मान्यताओं–मूल्यों के प्रति पूर्णतः उदासीनता बरतने लगी। नवोत्थान के लक्ष्य के साथ सामाजिक क्रांति के जरिये अब भारतीय समाज उस कगार पर खड़ा था, जहां से पीछे लौटने की कोई संभावना नहीं थी और न आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त साधन।[27]

समाज में अनेक विसंगतियाँ थी और उसका उन्मूलन हुआ यह सब निराला के साहित्य लेखन में परिलक्षित होता है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग के साथ कदम–मिलाकर चलता है वह उस विषमताओं, समस्याओं से अवगत कराकर, अपने विचारों से नये सुझाव भी देता है,आदर्श भी अपने चरित्रपात्रों से समाज के समक्ष उच्च आदर्श स्थापित कर नयी सोच भी देता है।[28]

(ड.) साहित्यिक परिवेश

भारतीय समाज में यह नवजागरण का काल था। इस युग का साहित्य अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित तथा विविध शक्तियों और प्रेरणाओं से अनुप्रेरित है। भारतीयों के हृदय में उस समय विदेशी शासन में अपने जन्मसिद्ध समस्त अधिकारों से वंचित होकर तथा अपने ही राष्ट्र में दीन–हीन होकर जीवन–यापन करने के कारण एक तीक्ष्ण प्रतिक्रिया उत्पन्न होने लगी थी। परिणामतः जनमानस में स्वाभिमान जाग उठा और वे पुरातन भारत की महिमा का स्मरण कर वर्तमान भारत के दयनीय पतन पर आँसू बहाने लगे। तब चारों ओर सुधार, प्रगति की आवाज सुनाई पड़ने लगी। जनता में देशप्रेम की भावना प्रबल होने लगी फलतः साहित्य में देशवासियों की समस्या, उनके विचार तथा उनकी भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होने लगी। प्रेम गीतों की रचना के साथ–साथ जनता की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मनोदृष्टि एवं परिस्थिति की झलक दिखाने लगे। वे समाज में व्याप्त रूढ़िप्रियता, पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण, धार्मिक मिथ्याचार, राष्ट्र की निर्धनता, पराधीनता आदि से व्यथित हुए, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक तथा शैक्षणिक समस्याओं के प्रति जागरूक हुए और तब ये राष्ट्र के युगानुकूल नव–निर्माण के महत्तम कार्य में संलग्न हुए। इस समय प्रेस, मुद्रण

एवं यातायात के साधनों का विकास हो जाने से साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा । उसे प्रचार एवं प्रसार का अधिक अवसर मिला और साहित्य सर्वप्रथम जनसंपर्क में आया तथा नये आयामों में विकसित हुआ।

साहित्यिक क्षेत्र में इस काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना गद्य का विकास है। इस समय से पहले साहित्य में गद्य का प्रचलन न था किन्तु आधुनिक काल में युग की नवीन परिस्थितियों, मान्यताओं तथा आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति के लिये गद्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया। हिन्दी–गद्य–साहित्य के विकास–क्रम में भारतेन्दु के गद्य–साहित्य का महत्व मूल्य असाधारण है। इसी युग में ब्रिटिश शासन–व्यवस्था की दृढ़ता के बावजूद उसके प्रति विरोध भाव प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से सभी प्रभावित है। साहित्य–सृजन की दृष्टि से हिन्दी–गद्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ, विशेषतः निबन्ध और नाटक–इन दो विधाओं में लेखकों को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उपन्यासों में सामाजिक जीवन के स्पन्दन का स्वर भी इसी युग में सुनाई पड़ने लगा। सब मिलाकर भारतेन्दु–काल का साहित्य व्यापक जागरण का सन्देश लेकर आया और भाषा के स्वरूप–विकास में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस प्रकार भाषा और साहित्य दोनों जीवन की गति के साथ जुड़ गये। इस युग के साहित्यकारों का हिन्दी के प्रति, राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट निष्ठा थी।[29]

द्विवेदी युग में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान भावना थी । अतः तात्कालीन कवियों के मुख्य स्वर में राष्ट्रीयता ही है। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं प्रणयन किया। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतन्त्रता–प्राप्ति के लिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी। द्विवेदी–युग की कविता राष्ट्रीयता सांस्कृतिक कविता है। इस युग की राष्ट्रीयता साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता से उपर उठकर उदार और व्यापक राष्ट्रीयता है। मातृभूमि के लिए सर्वस्व–बलिदान, स्वार्थ–त्याग, तथा पारस्परिक भावना को विकसित किया तथा तात्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल प्रदान किया। उन्होंने जहां सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों एवं निरर्थक रूढ़ियों पर जोरदार प्रहार किया, वहीं अपनी परम्परा के उपयोगी तत्वों का सबल समर्थन और पोषण भी किया।

इस युग में विदेशी शासन के प्रति जनता के असन्तोष में निरन्तर वृद्वि हुई और हमारी राष्ट्रीय चेतना क्रमशः विकसित होती हुई एक निश्चित लक्ष्य 'पूर्ण स्वतन्त्रता' की प्राप्ति की सिद्वि के संकल्प में परिणत हुई, जिनकी अभिव्यक्ति इस युग के साहित्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में ध्यान आकृष्ट करती है। यह राजनीतिक जागरूकता, आर्थिक समझदारी, सामाजिक–धार्मिक उदारता तथा राष्ट्र–प्रेम मुख्यतः शिक्षित मध्यवर्ग की जनता के जागरण का परिणाम था। समाज को सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करने वाला वर्ग यही था। साहित्य रचना भी इसी शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज द्वारा की जा रही थी। यह वर्ग सर्वाधिक संवेदनशील था। साहित्यकारों के मन पर भी राष्ट्र की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का प्रभाव पड़ता था और वह उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होती थी। यही कारण है कि आलोच्यकाल के गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा में अन्तर्निहित चेतना एक ही है और वह व्यापक राष्ट्रीय जागरण एवं सुधार की भावना से संबंद्ध है।

इस काल में समाज की दीन–हीन अवस्था, आर्थिक विषमता, धार्मिक पतन और व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं को दृष्टि में रखकर साहित्य की रचना की गई। वस्तुतः यह राष्ट्रीय चेतना का युग था जिसमें अंग्रेजी शासन को नष्ट करने के लिए जनता में अपूर्व संगठन–शक्ति पैदा हो चुकी थी। फलस्वरूप कुछ लेखकों ने इन महापुरूषों की जीवनियाँ भी लिखी, जो उस युग की विचारधारा का नेतृत्व कर रहे थे। अपने युग के कर्मवीर महापुरूषों के प्रेरणाप्रद कार्यों का निरूपण करने वाली इन जीवनियों का मूल उद्देश्य तद्युगीन जनता के मन में देशप्रेम की भावना जागृत करना था। भारतेन्दु–युग में इस जागरण ने साहित्य–धारा को नये पथ पर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम किया था। आलोच्य युग में यह जागरण प्रत्येक साहित्य–विधा का अन्तर्वर्ती प्रवाह बन गया। निबन्ध हो या आलोचना, कहानी हो या उपन्यास, अथवा काव्य, उसके कलात्मक परिधान को हटा देने पर भीतर राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य लक्षित होती है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन किया। शास्त्रीय रूढ़ियाँ टूटी, साहित्य का उद्देश्य व्यापक जन समुदाय को प्रभावित करना और उसे आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया। मुद्रण–व्यवस्था ने इस उद्देश्य की पूर्ति में योग दिया। साहित्य कुछ रसिकों की वस्तु न रहकर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया। नयी जीवन, दृष्टि ने स्थानीय भाषा को माध्यम बनाया।

छायावाद तक आते–आते यह आक्रोश धीरे–धीरे बढ़ा और स्वाधीनता संग्राम के रूप में फूट पड़ा और महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आजादी का संघर्ष एक नये रूप में अहिंसा और सत्य पर आधारित असहयोग के रूप में हमारे सामने आया। इस युग के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य में दो भावनाएँ पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुई–एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन, से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता–संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। इस युग के लेखकों ने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग लिया। फलस्वरूप इनकी देश–प्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेग स्वतः दिखायी देता है। इस काल में महात्मा गाँधी देश के सर्वमान्य नेता थे, इसलिए स्वाभाविक रूप में आजादी के भावों से भरी कविताओं में गाँधी–दर्शन का गंभीर प्रभाव दिखायी दिये।

इससे स्पष्ट होता है साहित्यकार के जीवन के चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण उसके साहित्य के विषय अवश्य बनते हैं। निराला के युग में उनके साहित्य पर भी तद्युगीन सभी धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक गतिविधियों का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित हुआ है। निराला जी के साहित्य में भारतेन्दु–युग से लेकर प्रेमचन्द युग तक की सभी

प्रवृतियाँ जुड़ी हुई है। अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी वे अपने युग से बहुत आगे रहे। उनकी भावधारा युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उत्तरोत्तर विकसित हुई। उनके साहित्य में युगीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

सन्दर्भ:

1- नगेन्द्र (1997), हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, पृ॰ 530.
2- शर्मा, रामविलास (1990), निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 14.
3- शर्मा, रामविलास (1990), निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 556.
4- शर्मा,, रामविलास (1990), निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 2.
5- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 559.
6- राय,एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 560.
7- शर्मा, रामविलास (1990), निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 218.
8- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 556.
9- निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी (1936) कुल्लीभाट, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, पृ॰ 122–123.
10- निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी (1934) चोटी की पकड, निराला निवेदन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 10.
11- श्रीवास्तव, श्रीमती विनोदिनी (1988) निराला साहित्य में जीवन दर्शन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृ॰ 50.
12- देवझारी, कृष्ण (1969), युग कवि निराला, अशोक प्रकाशन दिल्ली (1969), पृ॰ 13.
13- प्रभा आप्टे (1982), भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, पृ॰ 94.
14- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 527.
15- गुप्ता, मोती लाल (1997), भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,, पृ॰ 280.
16- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 579.
17- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 500.
18- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 501.
19- निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी (1978), अलका, राजकमल प्रकाशन, पटना, पृ॰ 99.
20- शर्मा, रामविलास (1990), निराला की साहित्य साधना भाग–2, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 141.
21- निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी (1978), अलका, राजकमल प्रकाशन, पटना, पृ॰ 49.
22- गुप्ता, मोती लाल (1997), भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,, पृ॰ 225.
23- गुप्ता, मोती लाल (1997), भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,, पृ॰ 320.
24- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 579.
25- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 561.
26- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 554.
27- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 355.
28- राय, एच.पी. (2004), भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 555.
29- नगेन्द्र (1997), हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, पृ॰ 488.

पिंकी जोशी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, जिला-टोंक, राजस्थान.